न्यायिक - पुनर्विलोकन

परिचयात्मक रूप में संविधान-संशोधन संविधान के भाग 20 में वर्णित है, भाग 20 दक्षिण अफ्रीका के संविधान से प्रेरित है, जबकि इंग्लैण्ड में ब्रिटिश पार्लियामेंट सर्वोच्च है, लेकिन भारत में संविधान सर्वोच्च है| ऐसी स्थिति में संविधान में विधान सम्बन्धी सर्वोच्चता का विवाद बिधायिका एवं न्यायपालिका के बीच हमेशा प्रतीत होता रहेगा |

संविधान का 24 वें संविधान संशोधन अधिनियम 1971, तथा 7 वा संशोधन अधिनियम 1956, तथा 42 वें संविधान संशोधन अधिनियम 1976 द्वारा इस अनुच्छेद में व्यापक परिवर्तन किये गए है, जबकि इन सभी में 42 वा संशोधन अधिनियम सबसे ज्यादा विवादित रहा है | मिनर्वा मिल्स वाद 1978 सु.को. द्वारा अनुच्छेद 368 (iv) तथा (v) को असंवैधानिक घोषित किये जा चुके हैं | जहाँ तक संविधान शास्त्रीयों का मत है कि, अनुच्छेद 368 सम्पूर्ण नहीं है, यह केवल संशोधन की प्रक्रिया और शक्ति को प्रावधानित करती है जबकि 368 (1) संविदीय शक्तियों का प्रावधान करती है, तथा अनुच्छेद 368 (2) संशोधन की प्रक्रिया बताता है | चूंकि किसी भी संविधान संशोधन के सम्बन्ध भी विधायी प्रक्रिया के नियमों का पालन किया जायेगा| अतः विधायी प्रक्रिया के नियमों का अवलंब लेना भी आवश्यक होगा| अतः अनुच्छेद 368 स्वयं में पूर्ण नहीं है |

24 वें संविधान संशोधन से पूर्व अनु. 368 (2) में **"राष्ट्रपति अपनी सहमति देंगे"** के स्थान पर **"राष्ट्रपति द्वारा सहमति दे दिए जाने पर"** शब्दों का प्रयोग किया गया है | अनु. 368 (2) के परंतुक के अनुसार, निम्नलिखित में कोई परिवर्तन करने हेतु लाये गए संशोधन के मामले में कम से कम आधे राज्यों की विधायिका का अनुसमर्थन आवश्यक होगा|----

(i) अनुच्छेद 54,55,73,162 तथा 241

(ii) अध्याय 4 भाग 5-A,

(iii) भाग 6 का अध्याय 5,

(iv) भाग 2 का अध्याय 1,

(v) सातवीं (7) अनुसूची की कोई सूची,

(vi) अनुसूची 4, संसद में राज्यों का प्रतिनिधित्व,

(vii) अनुच्छेद 368 के उपबंध :

राज्यों के अनुसमर्थन के लिए राज्य विधायिका का संकल्प आवश्यक होगा| यह अनुसमर्थन विधेयक के राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किये जाने के पूर्व प्राप्त किया जाना चाहिए| अनु. 368 (2) के परन्तुक में सातवें संशोधन अधिनियम द्वारा संशोधित किया गया है जिनके द्वारा निम्नलिखित शब्द विलुप्त कर दिए गए है,- -----" प्रथम अनुसूची के भाग A तथा B में विनिर्दिष्ट" यह संशोधन राज्यों के पुनर्गठन के फलस्वरूप आवश्यक हो गया था|

संशोधन शब्द का अर्थ ,...पूर्व मुख्य न्यायाधीश ने कहा कि ---

(1) 'संविधान में संशोधन शब्द भिन्न भिन्न अर्थों में प्रयुक्त है, कुछ अनुच्छेदों में यह व्यापक अर्थ रखता है तथा कुछ में सीमित

(2) (2) संविधान निर्माता संशोधन शब्द को व्यापकतम अर्थ में प्रयुक्त किये जाने का अर्थ नहीं रखते थे| यह विवक्षित है कि संसद कि संशोधन करने की शक्ति सीमित है |

(3) (3) कोई भी संशोधन प्रस्तावना तथा संविधान कि परिधि के भीतर ही है|

अब अनुच्छेद 368 पर प्रश्न यह विवादित रहा है कि, क्या संसद भाग 3 में संशोधन कर सकती है? अनुच्छेद 368 (1) के अनुसार संसद अपनी संविदीय शक्ति के प्रयोग में संविधान के किसी भी भाग में संशोधन कर सकती है| अनुच्छेद 368 (1) को 24वें संविधान संशोधन अधिनियम 1971 द्वारा योजित किया गया है | केशवानंद भारती में 24 वें संविधान संशोधन अधिनियम की वैधानिकता स्वीकार की जा चुकी है |

इस प्रकार भारतीय संविधान के किसी भी भाग में (भाग 3 तथा उद्देशिका सहित) संशोधन कर सकती है तथा यह प्रचंड शक्ति प्राप्त संसद है, किन्तु असीमित नहीं है | संविधान में ऐसा कोई संशोधन अनुमन्य नहीं है जो संविधान के मूलभूत ढांचे को नष्ट करता हो| (के.एन.भारती वाद) शंकरी प्रसाद 1951 सु.को. तथा सज्जन सिंह 1965 सु.को. के प्रकरणों में स्पष्ट किया गया था कि, अनुच्छेद 13 में

प्रयुक्त 'विधि' शब्द के अंतर्गत केवल विधायी शक्तियां आती है| अतः अनुच्छेद 368 के अधीन पारित संशोधन मूलाधिकारों के विरुद्ध होते हुए भी वैध होंगें | सज्जन सिंह 1965 के प्रकरण में **शंकरी प्रसाद** के निर्णय को अनुमोदित किया गया| सु.को. द्वारा किया गया कि यदि संविधान निर्माता मूलाधिकारों को संशोधन करने की शक्ति से परे रखने का आशय रखते होते तो उन्होंने अपना यह आशय संविधान में अवश्य ही स्पष्ट किये होते|

गोलकनाथ के वाद में (1967) में शंकरी तथा सज्जन सिंह के निर्णय को उलट दिया, तथा यह धारित किया कि,-----

(i) अनुच्छेद 368 में संविधान संशोधन की शक्ति नहीं है बल्कि प्रक्रिया है |

(ii) अनुच्छेद 13(2) में साधारण विधियाँ तथा संशोधन विधियाँ दोनों ही है |

(iii) संसद की विधायन शक्ति अनु. 245,246 तथा 247में ही है न कि अनु. 368 में है |

(iv) कोई विधि मूलाधिकार को न्यून या छीनती है तो उस सीमा तक शून्य होगी|

(v) मूलाधिकार को नैसर्गिक स्थान दिया गया है जो संशोधन की शक्ति से परे है | संविधान संसद का जनक है, यह किसी भी प्रकार से अनु. 368 को संविधान को ही नष्ट करने की अनुमति नहीं देता है |

24वें संविधान संशोधन अधिनियम 1971:

गोलक नाथ के वाद में (1967) सु.को. के प्रकरण में यह धारण किया गया कि,

1. संवि.संशो. विधियाँ तथा सामान्य विधियाँ सभी निर्मित करने की शक्ति अनु. 245 में निहित है|

2. अनुच्छेद 368 केवल प्रक्रियात्मक है तथा इसमें संशोधन की प्रक्रिया का उल्लेख है न कि संशोधन करने की शक्ति |

3. अनुच्छेद 13(2) में विधि शब्द व्यापक अर्थों में प्रयुक्त है इसमें सभी विधियाँ शामिल है| अतः ऐसी विधियाँ जो मूलाधिकार को न्यून, अंत या सीमित करती है अतः अनुच्छेद 13(2) के द्वारा शून्य होंगी |

अतः अनुच्छेद 13(2) के अनुसार -"राज्य ऐसी कोई विधि निर्मित नहीं करेगा जो भाग 3 द्वारा प्रदत्त मूलाधिकारों को छीनता हो तो ऐसी विधि प्रतिकूलता की सीमा तक शून्य होगी|"

गोलकनाथ के निर्णय से उत्पन्न कठिनाई के निवारण हेतु संविधान संशोधन अधिनियम 1971 पारित किया गया जिसमें निम्नलिखित संशोधन किये गए है:---

1.अनुच्छेद 368 का शीर्षलेख को संशोधित कर "संविधान के संशोधन हेतु प्रक्रिया" के स्थान पर "संविधान में संशोधन करने की संसद की शक्ति और उस हेतु प्रक्रिया" प्रतिस्थापित की गयी है |

2. अनुच्छेद 368(1) को पुनः क्रमांकित कर अनुच्छेद 368(2) बनाया गया |

3. अनुच्छेद 368(2) राष्ट्रपति की सहमति आबद्धकारी कर दी गई |

4.अनुच्छेद 368(1) जोड़कर यह स्पष्ट कर दिया गया कि संसद अपनी संविदीय शक्ति के प्रयोग में संविधान के किसी भी भाग में संशोधन कर सकती है |

5. अनुच्छेद 368(3) जोड़ा गया तथा घोषित किया गया कि अनु.13 की कोई बात अनुच्छेद 368 के अंतर्गत किये गए संशोधन पर प्रयोज्य न होगी |

अनुच्छेद 13(4) जोड़ा गया तथा व्यवस्था दी गई कि अनु.13 की कोई बात अनुच्छेद 368 के अंतर्गत किये गए संशोधन पर प्रयोज्य न होगी |

इंदिरा नेहरु गाँधी प्रति राज नारायण 1975 सु.को. के वाद में आधारभूत लक्षण के सिद्धांत को नया आयाम दिया गया, तथा घोषित किया गया कि मूलभूत लक्षणों की कोई अंतिम एवं पूर्ण सूची निर्मित नहीं की जा सकती| इनमें लक्षण विशेष मूलभूत है या नहीं यह तथ्य एवं परिस्थितियो का प्रश्न है| इस वाद में सु.को. की 'पुनर्विलोकन की शक्ति' का अत्यधिक विस्तार हुआ है |

शशांक प्रति यूनियन ऑफ़ इंडिया 1981 सु.को. ---अनुच्छेद 368 के अंतर्गत संसद की संवि. संशो. करने की शक्ति उन सीमाओं के अध्यधीन नहीं है जो अनु. 245 एवं 246 के अंतर्गत विधायन करते समय आरोपित होती है| विधायी शक्ति के प्रयोग में संसद को यह शक्ति प्राप्त नहीं है कि वह सातवीं अनुसूची की द्वितीय सूची के विषय पर राज्य द्वारा पारित अधिनियम को विधिमान्य कर दे |

अनुच्छेद 368 के अंतर्गत यह राज्य अधिनियम को नविन अनुसूची में शामिल

करते हुए विधिमान्य करने के लिए सक्षम है | अतः सातवीं अनुसूची में विधायी शक्तियों का वितरण संसद की अनु. 368 के अंतर्गत संवि.संशो. करने की शक्ति को नियंत्रित नहीं करता |

संपत कुमार प्रति यूनियन ऑफ़ इंडिया 1987 सु.को. 'न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति' संविधान का आधारभूत ढांचा है, यदि न्यायिक पुनर्विलोकन का पूर्ण अपवर्जन करने के वजाय कोई प्रभावशाली वैकल्पिक संस्थागत व्यवस्था के माध्यम से 'न्यायिक पुनर्विलोकन की व्यवस्था कर दी जाती है, तो यह 'आधारभूत ढांचा' का उल्लंघन न होगा |

मनोहर प्रति यूनियन ऑफ़ इंडिया 1987 बाम्बे

जबतक केशवानंद **भार**ती के प्रकरण में प्रतिपादित मूल ढांचे का सिद्धांत सु. को. की किसी बड़ी पीठ द्वारा अमान्य नहीं कर दिया जाता है तब तक किसी भी संविधान संशोधन को निम्नलिखित आधारों पर चुनौती दी जा सकेगी |

1. प्रक्रियात्मक आधार,
2. सरवान आधार |

प्रकाश प्रति यूनियन ऑफ़ इंडिया 1987 पं.तथा हरियाना .

संविधान में ऐसा कोई संशोधन जिसके द्वारा 'किन्ही विशेष प्रश्नों' के निर्धारण हेतु "न्यायाधिकरण" का गठन किया गया है तथा उसके "निर्णय को अंतिम घोषित" किया गया हो आधारभूत ढांचे के प्रतिकूल नहीं कहा जा सकता |

यस.आर.बोम्मई प्रति यूनियन ऑफ़ इंडिया 1994 सु.को. तथा डैनिअल लतीफ़ प्रति भारत संघ 2001 में, धर्म निरपेक्षता को मूल ढांचा माना गया है |